पाप के दिन में भी जो नष्ट होने से बच गया

प्रफुल्ल कोलख्यान

जैसा कि शंभुनाथ ने फ्लैप पर संकेत किया है, राजकिशोर के लेखन की शुरुआत कविता से हुई थी। बाद में वे पूरी गंभीरता के साथ हिंदी पत्रकारिता से जुड़ गये। अपनी तीखी और सारगर्भित सामाजिक-राजनीतिक टिप्पणियों से हिंदी के जिन कुछ पत्रकारों ने हिंदी पाठकों के मन में अपने लिए जगह बनाई, जिन कुछ पत्रकारों ने हिंदी पत्रकारिता को एक तेवर और आयाम दिया, उनमें राजकिशोर का नाम भी शमिल है। यह ठीक है कि राजकिशोर की टिप्पणियों से कभी-कभी सहमत होना कठिन होता है, तो कई बार लगभग असंभव। इस स्थिति में भी उनकी तर्कशैली और उनकी प्रखर दृष्टि की प्रशंसा करना जरूरी ही होता है। कहना न होगा कि हिंदी पत्रकारिता का गहरा और अधिकांश में एकआयामी संबंध राजनीति से ही सीमित है। हिंदी पत्रकारिता का दैनंदिन की राजनीति से सीमित हो जाना जिन्हें बहुत अच्छा नहीं लगता है, राजकिशोर की पत्रकारिता उनके लिए एक अलग तरह का आस्वाद भी है और आश्वासन भी। जो लोग राजकिशोर की पत्राकारिता को समझना चाहते हैं, उनके लिए यह देखना दिलचस्प हो सकता है कि एक कवि जब कविता की चौहद्दी लाँघकर पत्रकारिता के लिए कलम उठाता है, तो पत्रकारिता को कितना बदलता है। उसी तरह, यह देखना भी दिलचस्प हो सकता है कि एक प्रखर पत्रकार जब कविता को फिर से अपना माध्यम बनाता है, तो उसके साथ उसका बरताव कैसा होता है। इस बरताव में खुद कविता कितनी बदली हुई होती है और खुद रचनाकार भी कितना बदला हुआ होता है। राजकिशोर के लिए पत्रकारिता जहाँ अपने बाहर की अदृश्य होती जा रही दुनिया को सफलतापूर्वक फिर से दृश्य बनाने के कर्त्तव्य सरीखा है, वहीं कविता, उस दृश्यमान दुनिया

में खुद को विनम्रतापूर्वक विसर्जित करते हुए एक भिन्न तरह से खुद को फिर से पाने और उबारने का भी माध्यम है। इस आत्म-विर्सजन में 'कनफेसन' के बड़े आत्मीय क्षण हैं तो फिर से अपने को सँजोने में कई बार 'ऑबसेन' के भी दारुण प्रसंग हैं।

देखने की चीज यह भी है कि आज जब हिंदी कविता, लगभग, अपने सबसे बुरे दिन से गुजर रही है (कविगण क्षमा करें), एक सफल पत्रकार जिसे अपने को अभिव्यक्त करने का अन्यथा अवसर सहज उपलब्ध है, वह कविता को किन कारणों से अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अपनाता है। आज, सामान्यत: कहा जाता है कविता की जरूरत किसी को नहीं है। क्या यह झूठ है! कवित्व और काव्य-तत्त्व का उपयोग भले ही विभिन्न रूपों में होता है लेकिन कविता किसी सामाजिक प्रतिष्ठा के अर्जन का महत्त्वपूर्ण आधार नहीं है। फिर भी कविता है! और रहेगी! तो, कविता मनुष्य की किन जरूरतों को पूरा करती है? यह बार-बार विचारणीय है। राजकिशोर इस पर विचार करते हैं। इसलिए, उनमें 'फिर भी कविता' के होने की समझ है। वे महसूस करते हैं, 'जब संघर्ष की जरूरत हो/ कविता लिखना अपराध है// फिर भी लिखी जाती रहेगी कविता/ यह बताने के लिए कि/ संघर्ष किसके खिलाफ है'। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'चिंतामणि' में लिखा है, 'मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य-असभ्य सभी जातियों में, किसी न किसी रूप में पाई जाती है।... जानवरों को इसकी जरूरत नहीं।... हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्दविधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष मानते हैं।... भावयोग की सबसे उच्च कक्षा पर पहुँचे हुए मनुष्य का जगत् के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाता है, उसकी अलग भावसत्ता नहीं रह जाती, उसका हृदय विश्व-हृदय हो जाता है।' आचार्य रामचंद्र शुक्ल के संदर्भ से समझा जा सकता है कि हृदय की मुक्ति के लिए, जगत् के साथ तादात्म्य करने के लिए व्यक्ति के विश्व-हृदय बनने में कविता की बड़ी भूमिका है। जाहिर है कि एक अलग दिशा से उठे वैश्वीकरण के कोलाहल के बीच 'पाप के दिन' में जगत् के साथ तादात्म्य बिठाने और व्यक्ति के विश्व-हृदय बनने के लिए साहस और संघर्ष दोनों ही अनिवार्य होता है। इसी तादात्म्य और विश्व-हृदय बनने के लिए आत्म-संघर्ष और आत्म-साहस का संबंध राजकिशोर की पत्रकारिता से भी है और कविता से भी है।

आज जीवन-प्रसंग का अधिकतर प्रकट है। लेकिन आज की एक समस्या यह है कि जो जितना प्रकट है उतना ही प्रच्छन्न भी है। आज हम 'बढ़ी हुई सभ्यता' के दौर में पहुँच गये हैं। प्रकट के भीतर के प्रच्छन्न को अभिव्यक्त करना-– कविता लिखना-– दुश्वार हो रहा है। आचार्य शुक्ल ने कहा है कि 'प्रच्छन्नता का उद्घाटन कवि-कर्म का मुख्य अंग है। ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जायगी त्यों-त्यों कवियों के लिए यह काम बढ़ता जायगा। मनुष्य के हृदय की वृत्तियों से सीधा संबंध रखनेवाले रूपों और व्यापारों को प्रत्यक्ष करने के लिए उसे बहुत से पर्दों को हटाना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नये-नये आवरण चढ़ते जायँगे त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जायगी, दूसरी ओर कवि-कर्म कठिन होता जायगा।' अपने 'कवि से' संबोधित राजकिशोर की कविता का मनुहार है कि 'कवि जी ऐसा भी कुछ लिखिए/ जिसमें थोड़ा-खुश दिखिए// कठिन समय है क्रूर लोक है/ जिधर देखिए उधर शोक है/ लेकिन हमें डराते क्यों हैं/ रह-रह अश्रु बहाते क्यों हैं'। 'पाप के दिन' में संकलित सौ के आस-पास की कविताओं की प्रवृत्तिगत समानताओं को देखा जाये तो यह स्पष्ट होता है कि उनमें मुख्य रूप से चार-पाँच तरह की कविताएँ हैं-– जिनमें व्यक्ति के आत्मबोध एवं आत्मधिक्कार हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष संबंधों में प्रेम की नैसर्गिक प्रगाढ़ता भी है और प्रेम के नाम पर भोग के टुच्चेपन की ठकहारे के अंतर्द्वंद्व भी हैं, नैतिकता के नये क्षितिज भी हैं। कई कविताओं में राजनीतिक टिप्पणियाँ हैं, जिनमें आशा है और जिनमें नैतिक विडंबनाओं से ऊपजी टीस है। मध्यवर्गीय मन की जाहिर-सी 'आत्मकथा' यह कि 'मुझे मरना था/ किसी बड़े उद्देश्य के लिए/ मैं मर मिटा - एक यूँ ही-सी चीज पर// मुझे जीना था/ मुकम्मल बदलाव के लिए/ मैंने अपने को जीते हुए पाया/ औसत सुविधाओं/ और चालू सुविधाओं की खातिर'। इस सभ्यता में साहस के साथ ही जीया जा सकता है, 'साहस' यह कि 'सभ्यता के सारे तीर/ छाती पर सहता हूँ// शहर के बीचोबीच/ आदिवासी-सा रहता हूँ।' आज बाजारवाद के समय में सबकुछ पण्य है। हर ओर बिकने को शोर है। जो बिक न सके उसका जीवन ही व्यर्थ है! रघुवीर सहाय की कविता 'हँसो, हँसो जल्दी हँसो' को याद करते हुए राजकिशोर कहते हें, 'बिको, बिको जल्दी बिको/ इसके पहले कि वे चले जाएँ/ उन से हाथ मिलाते हुए नजरें नीची किए/ उन्हें याद दिलाते हुए बिको/ कि तुम कल भी बिके थे'। इस तरह राजकिशोर 'हँसने' के 'बिकने' में बदल जाने के सामाजिक तनाव की त्रासदी को सामने लाते हैं, स्थिति की पूरी व्यंग्यात्मकता के साथ।

आज धर्मवाद और बाजारवाद का नवसंश्रय जगजाहिर है। हमारे जातीय प्रसंग में तो यह लगभग सबसे बड़ा खतरा बनकर आया है। आये भी क्यों नहीं, आखिर तैंतीस कोटि देवी-देवताओं के रोजगार का मामला है! यह धर्मवाद का ही नतीजा है कि ईश्वर दुख हरता नहीं, बढ़ाता है। ऐसे ईश्वर से अपना 'संबंध' तय करती है राजकिशोर की कविता, 'तुम्हारा ईश्वर तुम्हें सुखी रखे/ मैं उसे/ अपने दुख बढ़ाने की/ इजाजत नहीं दे सकता'। राजकिशोर मनुष्य को बेदखल करनेवाली धर्मवादी और संप्रदायवादी राजनीति और उसके ईश्वर के साथ अपने नागरिक संबंध के द्वंद्व को सामने लाते हैं। राजकिशोर के प्रस्थान का प्रारंभ लोहिया के वैचारिक प्रभाव में होता है। शुरू से समाजवादी विचारधारा से उनका हार्दिक जुड़ाव रहा है। उनकी दृष्टि की विलक्षणता के बनने में इस विचारधारा का बड़ा हाथ है। वे तब भीतर से बहुत अधिक दुखी हो जाते हैं जब इस वैचारिक प्रभाव को कम-से-कम अपने अंदर पराभव में बदलते जाने के भी साक्षी बनते हैं। यह इनकी शक्ति भी है और सीमा भी। कहना न होगा कि किसी विचारधारा का प्रभाव सिर्फ सिद्धांतों से ही नहीं बनता है, बल्कि समकालीन व्याख्याकारों, बरतनेवालों, उस पर अपनी आस्था की घोषणा करनेवालों के वैयक्तिक-सामाजिक-राजनीतिक आचरण के सारांश से भी गहरे जुड़ता है। कई बार आचरण का उम्दा सामाजिक सारांश घटिया विचार को भी सामाजिक वैधता प्रदान करता है। जबकि, कई बार आचरण का छलकारी सामाजिक सारांश बढ़िया विचार की सामाजिक स्वीकार्यता के भी बनने में बड़ी कठिनाई खड़ी करता है। राजकिशोर अपने लेखन–– पत्रकारिता और इस संकलन की कविताओं–– में भी कुछ सीमाओं को न सिर्फ पहचानते हैं, बल्कि उसके अतिक्रमण का भी साहस जुटाते और संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष में कई तरह के उलझनों के भी शिकार हाते हैं और कई तरह के अंतविर्रोधों से भी टकराते हैं। 'हमारे समाजवादी' को याद करते हुए वे लगभग आत्मधिक्कार की मुद्रा अख्तियार करते हैं, 'देश को बनाने चले थे/ अपने को भी नहीं बना पाए/ हमारे समाजवादी/ कम्युनिस्टों की आलोचना करते-करते/ उन से भी बुरे पाए गए/ हमारे समाजवादी'। 'कम्युनिस्टों से भी बुरे' क्या मतलब! कम्युनिष्ट क्यों बुरे होते हैं? 'हमारे कम्युनिस्ट' का आश्य यह है कि कम्युनिस्ट इसलिए बुरे होते हैं, क्योंकि वे 'मार्क्स ओर लेनिन की/ शिक्षाएँ भूल गए/ सत्ता की फाँसी पर/ खुशी-खुशी झूल गए'। और 'दूसरे' यह कि 'पूरे-पूरे देश को/ जेल में तब्दील करनेवाले/ कम्युनिस्टों का दावा था:/ हम दूसरे से बेहतर हैं'। यह उनके संचित और बद्धमूल विचार हैं जो उनकी कविता में 'पूर्वग्रह-पश्चिमग्रह' बनकर प्रकट हो गए हैं! उनके ताजा काव्यानुभव में तो 'राजनीति' की समझ यह है कि 'वह/

नष्ट हो जाने से बच गया/ एक अदना-सा कम्युनिस्ट था'। जो नष्ट होने से बच गया वह कम्युनिस्ट था। वह अभी बचा हुआ है, इसलिए भी दोस्त यह 'दुनिया' सुंदर है, 'फिर भी दोस्तो/ हलफ उठा कर कहता हूँ/ यह दुनिया सुंदर है/ उससे ज्यादा सुंदर/ जितनी यह कभी रही होगी'। संकेत ओर संक्षेप में यह कि राजकिशोर का नागरिक मन अपनी बेचैनी में सर्व-नकार के जिस मनोभाव को प्रकट करता है उसके मूल में निरर्थकता में तब्दील होती तदर्थ जिंदगी के और मनोरम और सुंदर बनने की गूढ़ आकांक्षा है। यही आकांक्षा उनकी कविताओं को मूल्य-प्रवण बनाती है। 'बाँधो न नाव', 'रिश्ता', 'प्रश्न', 'मेरा देश' जैसी कई कविताएँ इस संकलन में हैं जो पाठकों के मन में एक नया स्पेस बनाती है और विश्वास दिलाती है कि पाप के दिन में भी जो नष्ट होने से बच गया वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, कम भरोसेमंद नहीं है।

सबकुछ के प्रकट हो जाने के बावजूद कहीं कुछ बचा रह जाता है जीवन में अनकहा, प्रच्छन्न। यह अनकहा और प्रच्छन्न कविता में कभी-कभी विलक्षण ढंग से प्रकट हो जाता है तो कभी सिर्फ हल्की-सी दस्तक देकर फिर आने का भरोसा देकर आगे बढ़ जाता है। संकलन में शामिल राजकिशोर की कविताएँ अपने समय की संवेदना को सहजता पूर्वक सामने जाती है; उसकी थकान और धीमी मुस्कान के साथ।

विचार संदर्भः राजकिशोर का कविता संग्रह 'पाप के दिन'

इस सामग्री के उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान